सत्यांश

निर्वाचन आयोग के अग्रसारण पर केन्द्र सरकार ने चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए खर्च-सीमा का निर्धारण नए सिरे से किया है। छोटे राज्यों व केन्द्रशासित क्षेत्रों के विधान सभा चुनाव में उम्मीदवार बीस लाख रुपये और लोक सभा चुनाव में चौवन लाख रुपये तक खर्च कर सकेंगे। बड़े राज्यों के विधान सभा चुनाव में प्रत्याशी अधिकतम अट्ठाईस लाख रुपये और लोक सभा चुनाव में सत्तर लाख रुपये तक खर्च कर सकते हैं। चुनावी खर्च बढ़ाने की मांग-जरूरत को महसूस कर यह फैसला किया गया है। यह अधिकतम खर्च की सीमा है जो पैसे वालों को ध्यान में रखकर निर्धारित की गई है।

लोक सभा चुनाव सिर पर है, अतः अभी बढ़ाने का औचित्य समझ में आता है। बड़े दलों व संपन्न उम्मीदवारों को इसका सीधा लाभ मिलेगा, वहीं आम आदमी व विपन्न उम्मीदवारों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा। चुनावी खर्च बढ़वाने की कोशिश करने वाले इस खर्च-निर्धारण से संतुष्ट हो जाएँगे, जरूरी नहीं है। लेकिन यह वैधानिक सीमा है, व्यावहारिकता तो सदैव सीमातीत होती है। यह वैधानिक सीमा भी केवल उम्मीदवारों के व्यक्तिगत चुनावी खाते के लिए है। राजनीतिक दलों के लिए न तो जमा-राशि-भंडार की कोई सीमा होती है और न खर्च की। 'अथाह' धनराशि के स्वामित्व वाले संगठन खर्च सीमा के बंधन में कैसे रह सकते हैं? इसलिए पैसे के दम पर और पैसे के बल ही राजनीति करने वाले व्यक्तियों व दलों को नई खर्च-सीमा नहीं रोक पाएगी। लेकिन इस नियम से कागजी औपचारिकताओं में खर्च-सीमा व्यवस्थित करनी ही होगी। इसमें कोई दिक्कत भी नहीं होगी, क्योंकि भारत ही नहीं, पूरे विश्व में बजाप्ते इसके लिए ज्ञान व तकनीक का बढ़िया रोजगारपरक पेशा विकसित है। यदि आमदनी व खर्च का ईमानदारी से प्रदर्शन की भावना हो, तो ज्ञान क्षेत्र में सी.ए. जैसे विशेषज्ञों की जरूरत कम हो जाएगी।

यद्यपि आम आदमी व गरीब आदमी के लिए चुनाव लड़ने की बाध्यता तो नहीं है, पर यदि उसकी इच्छा हो तो कैसे चुनाव लड़ पाएगा- इस पर कभी कुछ नहीं किया गया। क्या यह मान लिया गया है कि गरीब आदमी को चुनाव लड़ने की जरूरत नहीं है? आम आदमी परिश्रम की कमाई से कहाँ से ढेर-सारी रकम का बन्दोबस्त करेगा? चुनावी चंदे कहाँ से मिलते हैं, यह तो बाद में भी जान सकते हैं, परंतु चंदे के रूप में निवेश दलों व उम्मीदवारों की हैसियत देखकर ही किया जाता है। यह विभिन्न दलों व उम्मीदवारों को वर्षों से मिलते रहे दृश्यमान चंदे के आकलन से स्पष्ट है। साधारण आदमी के पास न तो अपना धन होता है और न चंदे से मिला धन। इसके बावजूद यदि वह पैसेवालों से लड़ने की जुर्रत करता है तो यह उसका लोकतांत्रिक साहस ही है। वर्तमान में धन बल से रिक्त व्यक्ति चुनाव में छिटपुट ही जीत पाता है। दूसरी ओर, पूँजीपति लोग झटके से विधायक, सांसद, मंत्री, नेता व राजनीतिक संगठन के पदाधिकारी बन जाते हैं। उनके लिए पद खरीदना आसान होता है। ऐसे बहुतेरे उदाहरण भारत में भी हैं और भारत से बाहर भी। जो सांसद-विधायक बन जाता है, उसकी संपत्ति में बेतहाशा वृद्धि होती है। आज भारत के सांसद-विधायक ही कई खरब के मालिक हैं।

राजनीति ही क्यों, धार्मिक संस्थान, मठ-आश्रम, स्वयंसेवी संगठन यानी एन.जी.ओ. सहित आधुनिक समाज की सभ्य मानी जानेवाली संस्थाएँ स्कूल, कॉलेज, मीडिया संस्थान, मनोरंजन उद्योग, फार्म हाउस, होटल, अस्पताल, जमीन-जायदाद आदि में बेशुमार दौलत लगी है, जिसमें बड़ा हिस्सा काले धन का है। सामान्यतः काला धन वह धन है, जिसका टैक्स नहीं दिया गया होता है, परंतु काला धन इतना ही नहीं है। वह सारा धन जो गैर-कानूनी व अनैतिक तरीके से जमा किया गया होता है, जिस धनोपार्जन का स्रोत छुपाया गया होता है या जिसे छुपाने की बाध्यता होती है और जिसमें धोखा, मक्कारी, धूर्तता, भ्रष्टता, कामचोरी आदि का सम्मिश्रण होता है। इसमें शास्त्र-लोक में शिष्ट माने गए चंदा, दान, उपहार, पुरस्कार आदि के ओछे व विकृत रूप की मिलावट रहती है। यह पाप-कर्म से कमाया गया होता है, अतः ऐसे धन को मन, आत्मा, बुद्धि, व्यवहार को भ्रष्ट करने वाला बताया गया है। स्वयं कमाकर ऐसे धन का संग्रह करना अथवा दूसरों द्वारा संग्रहीत धन को इस्तेमाल करना अनुचित है। इन सबके बावजूद, काला धन धन तो होता ही है।

आज समाज में एक नंबर का पैसा कम, दो-तीन नंबर के पैसे का प्रभुत्व व आधिक्य है। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि पैसा कैसे आ रहा है, कैसे भी हो, आना चाहिए। समाज में ऐसी मान्यताओं के अनुरूप पैसे उपार्जित करने वाले एक-आध प्रतिशत को छोड़कर लगभग सभी हैं। कुछ लोग मौके के अभाव में ऐसा नहीं कर पाते, उनकी बात अलग है। अगर काले धन व उसके स्रोत की कलई नहीं खुलती जो कि अधिकतर नहीं ही खुलती, तो इस बात का आजकल खास मायने नहीं कि धन कहाँ से आया है। इसी धन से वह सब सुख-सुविधाएँ, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा हासिल हो जाती है, जो कि धन के अभाव में नहीं हो पाती। इस धन का अमूमन बाजार-मूल्य भी उतना ही होता है, जितना सफेद धन का। धन के काले होने से रुपये का अवमूल्यन सामान्यतः नहीं होता। ईमानदारी, चरित्र, सात्विक कर्म-कमाई आदि का महत्त्व अब क्षीण हो गया है। काली कमाई के लिए तरह-तरह के धतकड़म, घृणित-कुत्सित-भ्रष्ट कार्य हो रहे हैं।

राज्य-समाज में धन का महत्त्व सदैव रहा है, क्योंकि इससे सारी

जरूरतें पूरी होती हैं। इसलिए अर्थ चाहे अपने में अर्थहीन हो, लेकिन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ का प्रमुख स्थान है। बहुत हद तक धर्म और काम की पूर्ति भी अर्थ से होती है। शास्त्र-ग्रंथ भी कहते हैं कि धन से धर्म होता है? लेकिन धन के बिना भी धर्म होता है जो अधिक धार्मिक हो सकता है। जीवन के चार पुरुषार्थों में जिस धन को स्थान मिला है, वह परिश्रम, ईमानदारी और सच्चाई से कमाये गए धन का है; चोरी, बेईमानी, भ्रष्टाचार, अनाचार से कमाये गए धन का नहीं। परंतु आज बेईमानी-भ्रष्टाचार के धन का ही बोलबाला है और अफसोस यह कि इसे कमाने वाले को न अपराध-बोध है और न इस धन को ग्रहण कर साफ-सुथरा जामा पहनाने वाली संस्थाओं को। बहुत सारी 'सभ्य' संस्थाएँ काले धन से, काले धन के लिए और काले धन को सफेद करने के लिए चल रही हैं।

महाभारत में मनुष्य को अर्थ का दास कहा गया है। इसलिए धन कमाने की होड़ में अच्छे-बुरे स्रोतों का विचार साधारणतः आजकल नहीं किया जाता; परंतु जब काली कमाई द्वारा अधिक धन इकट्ठा हो जाता है, तब हल्का बोध होता है कि कुछ गलत हुआ है, अतः क्यों न इसे अच्छी जगह लगाया जाए। फलतः राजनीति में लगाकर पद-प्रतिष्ठा, एन.जी.ओ. में लगाकर मन-धन का सफेदीकरण, स्कूल-मीडिया-मनोरंजन उद्योग में लगाकर मान-सम्मान और धार्मिक आश्रमों में लगाकर धर्म, भक्ति व पुण्य कमाने का दुस्साहस किया जाता है। ऐसी जगह काले धन के भरपूर स्वागत के लिए लोग बैठे होते हैं। उन्हें इस बात से मतलब नहीं होता कि धन काला है या सफेद। सोचें तो शायद धन से वंचित रह जाएँगे। ये ऐसे संस्थान हैं जो बुरे-से-बुरे तरीके से कमाए धन को पाक-साफ करने का दावा रखते हैं। राजनीति के लोग जिनमें सरकार, पक्ष-विपक्ष, राजनीतिक दल व उम्मीदवार सब सम्मिलित होते हैं, वे राजकाज के स्तर पर कुछ भी करने-कराने का माद्दा रखते हैं। धन लेकर महात्मा जन पुण्य व मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यहाँ दिया गया चन्दा दान रूप में होता है। शास्त्रीय परम्परा में दान का बड़ा महत्त्व है और गुप्त दान को सबसे अच्छा बताया गया है, क्योंकि इसमें लेने वाले की हीनता और देने वाले का अहंकार नहीं झलकता। इसी सुविधानुसार व्यापारी-उद्योगपति व अन्य धनी-मानी लोग जब राजनीतिक दलों को दान देते हैं तो अपना नाम व रकम गोपनीय रखते हैं, लेकिन जब वे धार्मिक पंडालों में, मठों-मंदिरों में 'दान' देते हैं तो अपना नाम व रकम माइक से जोर-जोर से उद्घोषित कराते हैं; पत्थरों, दीवारों, सीढ़ियों पर अंकित कराते हैं। कई बार मंदिर की पहचान भी अपने नाम से जोड़ देते हैं। बिड़ला मंदिर में किस देवी-देवता की प्रतिमा है, यह बिना देखे पता नहीं चल पाता; लेकिन बिड़ला मंदिर सुनकर लगता है कि यह बिड़ला भगवान का मंदिर है।

खैर! अपेक्षाकृत सभ्य व जिम्मेदार कहलानेवाले संस्थान भी धन में पूरी मोहासक्ति रखते हैं। धन किस तरकीब से उगाहा गया है, इस पर कम-से-कम लेने के समय एतराज नहीं होता। वे भ्रष्टता व बेईमानी का दान लेकर भी अभिभूत-वशीभूत होते हैं। इसी धन की बदौलत इन संस्थाओं व इनके पीठाधीश्वरों का आत्मीय सान्निध्य धनदाता को प्राप्त होता है, जिन्हें गैरकानूनी, विदेशी चंदे लेने में हिचक नहीं होती। काले धन को पचाने वाले ये राजनीतिक, धार्मिक, स्वयंसेवी स्वायत्त संस्थान यदि काले धन की आवक पूर्णतः निषिद्ध कर दें, तब कुछ हद तक काले धन का भंडाफोड़ हो सकता है। लेकिन ये कहते हैं कि हमारे यहाँ काले धन का सदुपयोग होता है। इस धन का एक बड़ा हिस्सा इनके माध्यम से 'सार्वजनिक हित' में लग जाता है। यह ठीक है, पर इसी कालेधन की कालिमा से अनेक संगठन-संस्थान अपने मूलोद्देश्य से विलग होकर भ्रष्ट हो चुके हैं। काले धन ने इन्हें काली कमाई करने वालों के प्रति एहसानमंद बनाया है, फलतः उनके जाने-अनजाने संरक्षक ही सिद्ध होते हैं।

राजनीतिक दलों, धार्मिक संस्थाओं व स्वयंसेवी संगठनों सहित काले धन से संचालित संस्थाओं का विवेक भ्रष्ट हो चुका है और कहने की जरूरत नहीं कि अरबों-खरबों के साम्राज्य वाला यह चतुष्कोण आर्थिक अर्श पर रहने के बावजूद स्वयं में कितना दूषित है। जो स्वयं भ्रष्ट व दूषित हो, वह समाज भी अपने जैसा ही बनाएगा। कोई नयी 'गंगा' ये सब नहीं हैं जो सभी प्रकार के दुराचारों-व्यभिचारों, कदाचारों व पापों से उगाहे रकम को हजम कर अपने मूल चरित्र में पवित्र ही रहेंगे। गुमान हो सकता है कि चूँकि ये धार्मिक हैं, राजनीतिक हैं, स्वयंसेवी हैं, स्वायत्त हैं, अतः कैसे भी पाप धन-कर्म को आत्मसात कर समाजहित में अमृत वर्षा कर सकते हैं। इनके इसी दावे से काली कमाई करने वालों का मनोबल बढ़ता है।

दूसरी ओर, भ्रष्ट तरीके से कमाने वाले यदि ऐसे दान की बजाय शुरू से ही शारीरिक-मानसिक आर्थिक शोषण करने से दूर रहें, अत्यधिक मुनाफाखोरी व नकली-फर्जी उत्पादों-कार्यों की ओर न बढ़ें, ग्राहक, उपभोक्ता, आम आदमी के हित में सेवा की तरह नौकरी या व्यवसाय करें, तो सबसे बड़ा पुण्य कर्म और समाजहित होगा। परंतु विचित्र विडम्बना है कि वास्तव में कोई अच्छा काम किसी सही व्यक्ति द्वारा आरंभ किया जाता है तो उसके लिए आज भी अन्य अड़ँगों पैसे का टोटा पड़ जाता है, वह असमय काल के गाल में चला जाता है, जबकि गलत जगह पर निवेश करने-कराने वालों की लाइन लगी है। सही जगह धन नहीं लगता, इसमें उस स्थान के अच्छे लोगों के मन में गोरखधंधा व काले धन के प्रति अनिच्छा तो कारण होती ही है, लेकिन उससे कहीं अधिक आर्थिक प्रभुता वाले समाज के मन-मानस में अच्छे-सच्चे के प्रति संस्कारवश तीव्र वितृष्णा का होना है। आखिर अपने यहाँ यों ही नहीं कहा गया है - 'जैसा अन्न, वैसा मन।'